जय गुरु हीरा   श्री महावीराय नमः   जय गुरु मान

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैनागम स्तोक वारिधि

द्वितीय कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर - 342001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490, 2622623 फैक्स : 0291-2636763

कर्म-प्रकृति

(उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 33 में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ, आठ कर्मों की जघन्य-उत्कृष्ट स्थितियां, भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 9 में कर्मों के प्रकृति-बंध के 85 कारण और पन्नवणा सूत्र पद 23 उद्देशक 1 में कर्मभोग के 93 कारण बताये हैं।)

कर्म-कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ लगे हुए दूध पानी की तरह एकमेक हुए कार्मण-पुद्गलों को 'कर्म' कहते हैं।

कर्मों के नाम - 1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र और 8. अन्तराय कर्म।

लक्षण :-

1. वस्तु के विशेष धर्म को जानना 'ज्ञान' कहलाता है और जिसके द्वारा यह ज्ञान गुण आच्छादित होता है, उसे 'ज्ञानावरणीय' कर्म कहते हैं, जैसे- सूर्य के आगे बादल आ जाने से उसका प्रकाश ढक जाता है। इस कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान गुण प्रकट होता है।
2. वस्तु के सामान्य धर्म को जानना दर्शन कहलाता है और जिसके द्वारा यह दर्शन गुण आच्छादित होता है, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे द्वारपाल की रुकावट के कारण राजा के दर्शन नहीं हो पाते। इस कर्म के क्षय से अनन्त दर्शन गुण प्रकट होता है।
3. जिससे जीव साता व असाता का अनुभव करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जैसे शहद लगी हुई तलवार को चाटने से जीव को पहले सुख व बाद में जीभ कटने पर दुःख का अनुभव होता है। यह आत्मा के निराबाध गुण को प्रकट नहीं होने देता है।
4. जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से हीन) हो जाये, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। जैसे-शराब पीने से मनुष्य अपना भान भूल जाता है। यह कर्म आत्मा के क्षायिक समकित तथा अनन्त वीतरागता नामक गुण की घात करता है।
5. जिसके उदय से जीव चारों गतियों में अमुक काल के लिए रुका रहे, उसे आयु कर्म कहते हैं। जैसे- जेल में कैदी न चाहते हुए भी रुक जाता है। यह कर्म आत्मा के अटल अवगाहना अथवा अमरत्व गुण को प्रकट नहीं होने देता है।
6. जिसके प्रभाव से जीव गति आदि विविध पर्यायों का अनुभव करें या जिसके सद्भाव से आत्मा का निज गुण अमूर्तत्व (अरूपीपना) प्रकट नहीं होवे, उसे नाम कर्म कहते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नाम कर्म के प्रभाव से जीव अनेक तरह के रूप धारण करता है।
7. जिसके प्रभाव से जीव ऊँच-नीच कुलों में उत्पन्न होता है या उच्चता-नीचता के संस्कार प्राप्त होते हैं, जो जीव के अगुरूलघु गुण को प्रकट नहीं होने देता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। जैसे- कुम्भकार छोटे-बड़े बर्तन बनाता है, वैसे ही आत्मा कभी उच्च कुल में व कभी नीच कुल में जन्म लेती है।

8. जिससे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में बाधा उत्पन्न होवे, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। जैसे- राजा की आज्ञा होने पर भी भण्डारी धन-प्राप्ति में बाधक हो जाता है। यह कर्म आत्मा के अनन्त आत्म-सामर्थ्य नामक गुण की घात करता है।

कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ :-

आठ कर्मों की 148 अथवा 158 उत्तर प्रकृतियाँ हैं। यथा- ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयु की 4, नाम की 93 अथवा 103, गोत्र की 2 और अन्तराय कर्म की 5 प्रकृतियाँ हैं।

कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ निम्न हैं :-

1. **ज्ञानावरणीय की पाँच प्रकृतियाँ-** 1. मतिज्ञानावरणीय, 2. श्रुतज्ञानावरणीय, 3. अवधिज्ञानावरणीय, 4. मनः पर्यायज्ञानावरणीय और 5. केवलज्ञानावरणीय।
2. **दर्शनावरणीय की नौ प्रकृतियाँ-** 1. निद्रा, 2. निद्रा-निद्रा, 3. प्रचला, 4. प्रचला-प्रचला, 5. स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि), 6. चक्षु-दर्शनावरणीय, 7. अचक्षु-दर्शनावरणीय, 8. अवधि-दर्शनावरणीय और 9. केवल-दर्शनावरणीय।
3. **वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ-** 1. साता और 2. असाता वेदनीय।
4. **मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियाँ-** मुख्य दो भेद- 1. दर्शन मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय।

   दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ- 1. मिथ्यात्व मोहनीय, 2. मिश्र मोहनीय और 3. सम्यक्त्व मोहनीय।

   चारित्र मोहनीय के भी दो भेद- कषाय मोहनीय और नो कषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय की सोलह प्रकृतियाँ हैं- **अनन्तानुबन्धी-** 1. क्रोध (पर्वत की दरार के समान), 2. मान (वज्र का स्तंभ), 3. माया (बांस की जड़-गाँठ की वक्रता), 4. लोभ (किरमिची रंग), 5. **अप्रत्याख्यानी** क्रोध (सूखे तालाब की दरार), 6. मान (अस्थि-हड्डियों का स्तंभ), 7. माया (मेंढे का सींग), लोभ (खंजन-गाड़ी के पहिये का कीट), 9. **प्रत्याख्यानावरण** क्रोध (बालू रेत में खींची गई लकीर), 10. मान (काष्ट का स्तंभ), 11. माया (चलते बैल के मूत्र की लकीर), 12. लोभ (काजल की टीकी), 13. **संज्वलन** क्रोध (पानी में खींची गई लकीर), 14. मान (बेंत का स्तंभ), 15. माया (बांस के छिलकों के समान), 16. लोभ (हल्दी-फिटकरी के रंग के समान)।

   अनन्तानुबन्धी कषाय में मरने वाला जीव नरक गति में जाता है, इस कषाय की स्थिति जीवन पर्यन्त (जब तक मिथ्यात्व नहीं छूटे) है। यह सम्यक्त्व नहीं आने देती।

   अप्रत्याख्यानी कषाय [1] में मरने वाला जीव तिर्यंच गति पाता है। इस कषाय की स्थिति एक वर्ष की है, यह श्रावक के व्रत, देशविरति नहीं आने देती।

---

[1] **उपर्युक्त अनन्तानुबंधी आदि कषायों की गति व स्थिति का विवेचन व्यवहार नय की अपेक्षा से है, यह सामान्य लक्षण रूप है। क्योंकि पहले गुणस्थान वाले में प्रायः अनन्तानुबंधी चौक का बन्ध व उदय रहते हुए भी प्रथम गुणस्थान वाला सिर्फ नरक में ही न जाकर चारों गतियों में जाता है। इसी प्रकार स्थिति का विवेचन भी उस समय के भावों की तरतमता प्रकट करने की अपेक्षा से है। वास्तव में किसी भी कषाय का उपयोग अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं रहता है तथापि यहाँ पर उक्त काल तक उन-उन कषायों की स्थिति का जो वर्णन किया गया, वह प्रतिशोध की भावना से अवस्थित शल्य, वासना या संस्कार की अपेक्षा से किया गया जानना चाहिये। (कषाय पाहुड पृ. 610)**

प्रत्याख्यानावरण कषाय में मरने वाला जीव मनुष्य गति प्राप्त करता है। इस कषाय की स्थिति चार माह की है। यह सर्वविरति संयम नहीं आने देती।

संज्वलन कषाय में मरने वाला जीव देवगति में जाता है। इसमें संज्वलन क्रोध की स्थिति 2 माह की, संज्वलन मान की 1 माह की, संज्वलन माया की 15 दिन की तथा संज्वलन लोभ की अन्तर्मुहूर्त्त की है। यह कषाय केवलज्ञान तथा यथाख्यात चारित्र नहीं होने देती।

संज्वलन क्रोधादि कषायों की जो स्थिति बतलायी है, वह उनके जघन्य स्थिति बन्ध की अपेक्षा से समझनी चाहिए। ये स्थितियाँ क्षपक श्रेणि में 9वें गुणस्थान में अपने-अपने बन्ध विच्छेद के समय बन्धती हैं।

नोकषाय मोहनीय की नौ प्रकृतियाँ- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

5. **आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ**- 1. नरकायु, 2. तिर्यंचायु, 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।
6. **नाम कर्म की 93 अथवा 103 प्रकृतियाँ**-
   1. गति 4- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति।
   2. जाति 5- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।
   3. शरीर 5- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर।
   4. बन्धन 5- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण बन्धन।
   5. संघातन 5- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण संघातन।
   6. अंगोपांग 3- औदारिक, वैक्रिय, और आहारक अंगोपांग।
   7. संस्थान 6- समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्जक और हुण्डक संस्थान।
   8. संहनन 6- वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और सेवार्त्त संहनन।
   9. वर्ण 5- काला, नीला, लाल, पीला और सफेद।
   10. गन्ध 2- सुगन्ध और दुर्गन्ध।
   11. रस 5- तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा।
   12. स्पर्श 8- ठण्डा, गर्म, रूक्ष (लुखा), स्निग्ध (चिकना), खुरदरा, कोमल, हल्का और भारी।
   13. आनुपूर्वी 4- नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानुपूर्वी।
   14. विहायोगति 2- शुभ और अशुभ विहायोगति।

प्रत्येक प्रकृति 8- अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थंकर नाम।

त्रस दशक- त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति नाम।

स्थावर दशक- स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति नाम।

उपुर्यक्त 93 प्रकृतियों में बन्धन की निम्न 10 प्रकृतियाँ जोड़ने से नाम कर्म की कुल 103 प्रकृतियाँ होती हैं-

1. औदारिक तैजस बन्धन, 2. औदारिक कार्मण बन्धन, 3. औदारिक तैजस-कार्मण बन्धन, 4. वैक्रिय तैजस बन्धन, 5. वैक्रिय कार्मण बन्धन, 6. वैक्रिय तैजस-कार्मण बन्धन, 7. आहारक तैजस बन्धन, 8. आहारक कार्मण बन्धन, 9. आहारक तैजस-कार्मण बन्धन, 10. तैजस-कार्मण बन्धन।[2]

7. **गोत्र कर्म की दो प्रकृतियाँ**- 1. उच्च और 2. नीच गोत्र।
8. **अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ**- 1. दानान्तराय, 2. लाभान्तराय, 3. भोगान्तराय, 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय।

बन्ध के प्रकार- 1. प्रकृतिबन्ध, 2. स्थितिबन्ध, 3. अनुभागबन्ध और 4. प्रदेश बन्ध।

1. **प्रकृतिबन्ध**- जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म-पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों का होना।
2. **स्थितिबन्ध**- जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म-पुद्गलों में अमुक काल तक जीव के साथ लगे रहने की कालमर्यादा।
3. **अनुभाग बन्ध**- जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म-पुद्गलों में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।
4. **प्रदेश बन्ध**- जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धों का सम्बन्ध होना।

बन्ध और उदय :-

1. **ज्ञानावरणीय**- ज्ञानावरणीय कर्म जीव छह प्रकार से बान्धता है-
   1. ज्ञान और ज्ञानी का अवर्णवाद करे अथवा अवगुण निकाले।
   2. ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करे व उनका उपकार न माने।
   3. ज्ञान सीखने में अन्तराय देवे।
   4. ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करे।
   5. ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करे।
   6. ज्ञान व ज्ञानी से झूठा विषमवाद (झगड़ा) करें।

उदय दस प्रकार से- पाँच इन्द्रियों का आवरण तथा उन पाँच इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान का आवरण।[3]

2. **दर्शनावरणीय**- दर्शनावरणीय कर्म भी जीव छह प्रकार से बांधता है, जो ज्ञानावरणीय के समान है। ज्ञान व ज्ञानी के स्थान पर दर्शन व दर्शनी शब्द बोलें।
   इसका उदय (फल) नौ प्रकार से जीव प्राप्त करता है-
   1. चक्षुदर्शनावरणीय, 2. अचक्षुदर्शनावरणीय, 3. अवधिदर्शनावरणीय, 4. केवलदर्शनावरणीय, 5. निद्रा, 6. निद्रा-निद्रा, 7. प्रचला, 8. प्रचला-प्रचला और 8. स्त्यानगृद्धि।

3. **वेदनीय- साता वेदनीय कर्म जीव दस प्रकार से बान्धता है-**
   1. प्राण (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय) पर अनुकम्पा करने से।
   2. भूत (वनस्पति) पर अनुकम्पा करने से।
   3. जीव (पंचेन्द्रिय) पर अनुकम्पा करने से।
   4. सत्त्व (पृथ्वी, अप्, तेउ और वायुकाय के जीव) पर अनुकम्पा करने से।

---

[2] **बन्धन के दस भेद कर्मग्रन्थ भाग-1 की गाथा 37 के आधार पर दिये हैं।**

[3] **पाँचों इन्द्रियों के आवरण से तात्पर्य भावेन्द्रिय की अपेक्षा-क्षयोपशम (लब्धि) में कमी होना लिया है, जबकि इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान के आवरण से तात्पर्य- भावेन्द्रिय की अपेक्षा-उपयोग में कमी होना लिया है। (प्रज्ञापना सूत्र पद- 23 उद्दे. 1 का विवेचन)**

5. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को दुःख नहीं देने से।
6. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को शोक नहीं कराने से।
7. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं रुलाने से।
8. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं झुराने से।
9. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं मारने से।
10. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को परितापना नहीं उपजाने से।

साता वेदनीय कर्म आठ प्रकार से भोगा जाता है- 1. मनोज्ञ शब्द, 2. मनोज्ञ रूप, 3. मनोज्ञ गन्ध, 4. मनोज्ञ रस, 5. मनोज्ञ स्पर्श, 6. मन चाहे सुख, 7. अच्छे वचन और 8. निरोगी काया।

असाता वेदनीय कर्म जीव 12 प्रकार से बान्धता है- 1. प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख देने से, 2. बहुत जीवों को दुःख देने से, 3. शोक कराने से, 4. बहुत जीवों को शोक कराने से, 5. रुलाने से, 6. बहुत जीवों को रुलाने से, 7. झुराने से, 8. बहुत जीवों को झुराने से, 9. मार-पीट करने से, 10. बहुत जीवों को मार-पीट करने से, 11. परिताप उपजाने से और 12. बहुत जीवों को परिताप उपजाने से।

आठ प्रकार से उदय- 1. अमनोज्ञ शब्द, 2. अमनोज्ञ रूप, 3. अमनोज्ञ गन्ध, 4. अमनोज्ञ रस, 5. अमनोज्ञ स्पर्श, 6. मन का दुःख, 7. वचन का दुःख और 8. काया का दुःख।

4. **मोहनीय कर्म**- छह प्रकार से जीव बान्धता है- 1. तीव्र क्रोध करने से, 2. तीव्र मान करने से, 3. तीव्र माया करने से, 4. तीव्र लोभ करने से, 5. तीव्र दर्शन मोहनीय से और 6. तीव्र चारित्र मोहनीय से।

   उदय- मोहनीय कर्म की पूर्व कथित 28 प्रकृतियों के रूप में 28 प्रकार से उदय में आता है। [4]

5. **आयुष्य कर्म**- इसमें प्रत्येक गति के आयुष्य बन्ध के चार-चार कारण हैं। जो जीव जिस गति का आयुष्य बन्ध करता है, वह उसी को भोगता है।
   1. नरकायु के कारण- 1. महा आरम्भ करने से, 2. महा परिग्रह करने से, 3. मद्य-मांस का सेवन करने से और 4. पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने से।
   2. तिर्यंचायु के कारण- 1. माया करने से, 2. गूढ़ माया (विश्वासघात) करने से, 3. असत्य बोलने से और 4. न्यूनाधिक माप-तौल करने से।
   3. मनुष्यायु के कारण- 1. प्रकृति से सरल, 2. प्रकृति से विनीत, 3. दयावन्त और 4. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से रहित।
   4. देवायु के कारण- 1. सराग संयम (साधु धर्म), 2. संयमासंयम (श्रावक धर्म), 3. अज्ञान तप (बाल तप) और 4. अकाम निर्जरा (मिथ्यात्व के रहते हुए होने वाली निर्जरा)।

6. **नाम कर्म**- शुभ नाम कर्म जीव 4 कारणों से बान्धता है-

   1. मन की सरलता, 2. वचन की सरलता, 3. काया की सरलता और 4. विसंवाद रहितता।

   उदय 14 प्रकार से होता है- 1. इष्ट शब्द, 2. इष्ट रूप, 3. इष्ट गन्ध, 4. इष्ट रस, 5. इष्ट स्पर्श, 6. इष्ट गति, 7. इष्ट स्थिति, 8. इष्ट लावण्य, 9. इष्ट यशोकीर्ति, 10. इष्ट उत्थान-कर्म-बल-वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, 11. इष्ट स्वर, 12. कान्त स्वर, 13. प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर।

   अशुभ नाम कर्म जीव 4 कारणों से बान्धता है- 1. मन की वक्रता, 2. वचन की वक्रता, 3. काया की वक्रता और 4. विसंवाद (कलह) योग सहितता।

---

[4] **प्रज्ञापना में उपर्युक्त 28 प्रकारों का संक्षेपीकरण करके 5 प्रकार से भोगना बताया है- सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय, मिश्र वेदनीय, कषाय वेदनीय, नोकषाय वेदनीय। सभी प्रकृतियों का जो 93 प्रकार से भोगना बताया है, वह मोहनीय कर्म के 5 प्रकार से भोगने की अपेक्षा से है।**

उदय 14 प्रकार से होता है- 1. अनिष्ट शब्द, 2. अनिष्ट रूप, 3. अनिष्ट गन्ध, 4. अनिष्ट रस, 5. अनिष्ट स्पर्श, 6. अनिष्ट गति, 7. अनिष्ट स्थिति, 8. अनिष्ट लावण्य, 9. अनिष्ट यशोकीर्त्ति, 10. अनिष्ट उत्थान-कर्म-बल- वीर्य-पुरूषाकार पराक्रम, 11. हीन स्वर, 12. दीन स्वर, 13. अप्रिय स्वर और 14. अमनोज्ञ स्वर।

7. **गोत्र कर्म**- गोत्र कर्म सोलह प्रकार से जीव बांधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं- 1. उच्च गोत्र 2. नीच गोत्र। उच्च गोत्र आठ प्रकार से जीव बान्धता है- 1. जाति (मातृपक्ष), 2. कुल (पितृपक्ष), 3. बल, 4. रूप, 5. तप, 6. श्रुत, 7. लाभ और 8. ऐश्वर्य मद नहीं करने से।
   भोग (उदय)- उपर्युक्त आठों प्रकार का मद नहीं करने से आठों ही प्रकार का उच्च गोत्र प्राप्त होता है।
   नीच गोत्र- उपर्युक्त आठों प्रकार का मद करने से आठों ही प्रकार का नीच गोत्र प्राप्त होता है।
8. **अन्तराय कर्म**- यह पाँच प्रकार से जीव बान्धता है और पाँच प्रकार से भोगा जाता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अन्तराय (बाधा) डालने से बन्धता है और इससे पाँचों ही प्रकार की अन्तरायों की प्राप्ति होती है।

कर्मों की स्थिति और अबाधाकाल[5]-

कर्म का नाम	जघन्य	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल
1. ज्ञानावरणीय	अन्तर्मुहूर्त्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
2. दर्शनावरणीय	अन्तर्मुहूर्त्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
3. अन्तराय	अन्तर्मुहूर्त्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
4. वेदनीय[6]	12 मुहूर्त्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
5. मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	7 हजार वर्ष
6. नाम	आठ मुहूर्त्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 हजार वर्ष
7. गोत्र	आठ मुहूर्त्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 हजार वर्ष
8. आयु	अन्तर्मुहूर्त्त	33 सागरोपम	अबाधाकाल नहीं[7]

उपर्युक्त अष्ट कर्मों का छेदन-भेदन करके जीव अजर-अमर (मोक्ष) शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

[5] कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणाकरण नहीं होता तब तक का काल 'अबाधाकाल' कहलाता है।

[6] (अ) साता वेदनीय की जघन्य स्थिति ईर्यापथिकी क्रिया की अपेक्षा 2 समय की, सम्पराय की अपेक्षा 12 मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट 15 कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधाकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट 1500 वर्ष का है। (ब) असाता वेदनीय की जघन्य स्थिति एक सागरोपम के 3/7 भाग (सात भागों में से तीन भाग) में पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की, उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। इसका अबाधा काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष का है।

[7] आयु कर्म में सात कर्मों के अबाधाकाल सम्बन्धी नियम लागू नहीं होता, अतः अबाधाकाल नहीं माना जाता है। किन्तु आयुकर्म बन्धने के बाद जब तक उसका प्रदेशोदय तथा विपाकोदय इन दोनों में से किसी भी प्रकार का उदय नहीं हो, तब तक के काल को अर्थात् आयु-बन्ध से लेकर मरण तक के काल को अबाधाकाल माना जाता है।

गति-आगति का थोकड़ा

अनेक सूत्रों एवं ग्रन्थों में गति-आगति का अधिकार चले सो कहते हैं। जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है, उसे आगति तथा मरने के बाद जिस गति में जाकर उत्पन्न होता है, उसे गति कहते हैं।

संसारी जीवों के 563 भेद इस प्रकार हैं- नरक गति के 14, तिर्यंच गति के 48, मनुष्य गति के 303, देव गति के 198.

नरक गति के 14 भेद- 1. घम्मा, 2. वंषा, 3. सीला, 4. अंजना, 5.अरिष्टा, 6.मघा और 7. माघवती। इन सात नारकी के अपर्याप्त और पर्याप्त की अपेक्षा से 14 भेद होते हैं।

तिर्यंच गति के 48 भेद- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय इन चार स्थावरों के प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, अपर्याप्त और पर्याप्त ये चार-चार भेद होने से 4X4=16 भेद। वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक इन तीन के अपर्याप्त और पर्याप्त ये 6 भेद। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय के अपर्याप्त-पर्याप्त के भेद से 6 भेद।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन पाँच भेदों के सन्नी, असन्नी, अपर्याप्त और पर्याप्त, ये चार-चार भेद होने से 5X4=20 भेद।

इस प्रकार 16+6+6+20=48 भेद होते हैं।

मनुष्य गति के 303 भेद- 15 कर्मभूमिज (5 भरत, 5 ऐरवत, 5 महाविदेह), 30 अकर्मभूमिज- (5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत, 5 ऐरण्यवत), 56 अन्तर्द्वीपज, इन 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से 202 भेद। एक सौ एक सन्नी मनुष्य के चौदह अशुचि स्थानों से उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असंज्ञी अपर्याप्त मनुष्य के 101 भेद। इस प्रकार 202+101=303 भेद हुए। सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में ही काल कर जाते हैं, इसी कारण इनका पर्याप्त भेद नहीं होता है।

देव गति के 198 भेद- 10 भवनपति, 15 परमाधामी, 16 वाणव्यन्तर, 10 त्रिजृंभक, 10 ज्योतिषी, 12 देवलोक, 3 किल्विषी, 9 लौकान्तिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान। इन 99 प्रकार के देवों के अपर्याप्त व पर्याप्त की अपेक्षा से 198 भेद होते हैं।

इस प्रकार 14+48+303+198=563 भेद होते हैं। इन 563 भेदों की गति-आगति का वर्णन यहाँ किया जा रहा है-

1. **समुच्चय जीव की आगति 371 की-** (563 में से 7 नारकी, 86 युगलिक मनुष्य और 99 जाति के देवता, इन 192 के अपर्याप्त को छोड़कर, क्योंकि ये अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते हैं) **गति- 563 की।**
2. **पहली नारकी की आगति 25 की-** (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच और 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, ये 25 के पर्याप्त)। **गति 40 की-**(15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच, इन 20 के अपर्याप्त और पर्याप्त)

3. **दूसरी नरक की आगति 20 की-** (पहली नारकी की आगति के 25 में से 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय को छोड़कर) **गति 40 की-** पहली नारकी के समान पूर्ववत्।
4. **तीसरी नरक की आगति 19 की-** (ऊपर के 20 में से भुजपरिसर्प को छोड़कर) **गति 40 की** पूर्ववत्।
5. **चौथी नरक की आगति 18 की-** (ऊपर के 19 में से खेचर को छोड़कर) **गति 40 की** पूर्ववत्।
6. **पाँचवीं नरक की आगति 17 की-** (ऊपर के 18 में से स्थलचर को छोड़कर) **गति 40 की** पूर्ववत्।
7. **छठी नरक की आगति 16 की-** (ऊपर के 17 में से उरपरिसर्प को छोड़कर) **गति 40 की** पूर्ववत्।
8. **सातवीं नरक की आगति 16 की-** पूर्ववत्, किन्तु स्त्री और स्त्री नपुंसक को छोड़कर अर्थात् स्त्री पर्याय वाला जीव सातवीं नरक में नहीं जाता। **गति 10 की** (5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त)।
9. **इक्कावन जाति के देवता** (10 भवनपति, 15 परमाधार्मिक, 16 वाणव्यन्तर, 10 त्रिजृंभक) इनकी आगति 111 की (101 सन्नी मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सब के पर्याप्त) **गति- 46 की** (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय, इन 23 के अपर्याप्त एवं पर्याप्त)।
10. **ज्योतिषी एवं पहले देवलोक की आगति 50 की-** (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सबके पर्याप्त) **गति 46 की** पूर्ववत्।
11. **दूसरे देवलोक की आगति 40 की-** (ऊपर के 50 में से 5 हेमवय और 5 ऐरण्यवय छोड़कर) **गति 46 की** पूर्ववत्।
12. **पहले किल्विषी की आगति 30 की-** (ऊपर के 40 में से 5 हरिवास 5 रम्यक्वास को छोड़कर) **गति 46 की** पूर्ववत्।
13. **तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक, 9 लोकान्तिक और दूसरा-तीसरा किल्विषी, इन 17 प्रकार के देवों की आगति 20 की-** (15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच का पर्याप्त) **गति 40 की-** (उपर्युक्त 20 के अपर्याप्त और पर्याप्त)।
14. **नवमें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक के देवों की आगति 15 की-** (15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त) **गति 30 की-** (15 कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त)
15. **बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय इन तीनों की आगति 243 की-** 179 की लड़ (101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 30 कर्मभूमिज मनुष्य, 48 तिर्यंच) और 10 भवनपति, 15 परमाधार्मिक, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृंभक, 10 ज्योतिषी, पहला किल्विषी और पहला, दूसरा देवलोक, इस प्रकार 64 जाति के देवता के पर्याप्त 179+64=243 **गति -179 की** लड़।
16. **सूक्ष्म व बादर तेउकाय, वायुकाय की आगति 179 की-** (179 की लड़ पूर्ववत्) **गति-48 की** (तिर्यंच के 48)।
17. **सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म अप्, सूक्ष्म व साधारण वनस्पति एवं तीन विकलेन्द्रिय की आगति-179** की, **गति - 179 की** पूर्ववत्।
18. **असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 179** की पूर्ववत्। **गति 395 की-** (56 अन्तर्द्वीपज, 51 जाति के देवता और पहली नरक, इन 108 के अपर्याप्त पर्याप्त 216+179 की लड़=395)।
19. **सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 267 की-** (99 जाति के देवता में से 9 वें देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त 18 भेद छोड़कर शेष 81 जाति के देवता और 7 नारकी, इन 88 के पर्याप्त और 179 की लड़) **गति-** पाँच भेदों की अलग-अलग-
    1. जलचर की गति 527 की- (नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त के 18 जाति के देवता के अपर्याप्त और पर्याप्त, इन 36 भेदों (जीवों) को 563 में से छोड़कर)।

2. थलचर (स्थलचर) की गति 521 की- (उपर्युक्त 527 में से पाँचवीं, छठी और सातवीं नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।
3. खेचर की गति 519 की- (उपर्युक्त 521 में से चौथी नरक का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।
4. उरपरिसर्प की गति 523 की- (उपर्युक्त 519 एवं चौथी, पाँचवीं नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त ये चार भेद और मिलाकर)।
5. भुजपरिसर्प की गति 517 की- (523 में से तीसरी, चौथी, पाँचवीं नरक का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।

20.**असन्नी मनुष्य की आगति 171 की**- (179 की लड़ में से 4 तेउकाय के एवं 4 वायुकाय के, इन 8 भेदों को छोड़कर) **गति 179** की पूर्ववत्।

21.**15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति 276 की**- (99 जाति के देवता, पहली से छठी तक ये छः नरक, एवं 179 की लड़ में से तेउकाय, वायुकाय के 8 भेद छोड़कर 171 की , इस प्रकार 171+99+6=276) **गति- 563** की।

22.**30 अकर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति 20 की**- (15 कर्मभूमिज मनुष्य एव 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय का पर्याप्त) गति अलग-अलग- 5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु की **गति 128 की**- (64 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त)

5 हरिवास और 5 रम्यक्वास की गति 126 की- (उपर्युक्त 128 में से पहला किल्विषी का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।

5 हेमवय और 5 ऐरण्यवय की गति 124 की- (उपर्युक्त 126 में से दूसरे देवलोक के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।

23.**56 अन्तरद्वीपों के युगलिक मनुष्यों की आगति 25 की**- (पहली नरक की तरह 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन सबके पर्याप्त) **गति 102 की**- (51 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त)।

24.**तीर्थंकर की आगति 38 की**- (35 वैमानिक देवता- (3 किल्विषी छोड़कर) और पहली से तीसरी नरक, इन सबके पर्याप्त) **गति-मोक्ष की।**

25.**चक्रवर्ती की आगति 82 की**- (15 परमाधार्मिक एवं 3 किल्विषी ये 18 भेद छोड़कर 81 जाति के देवता एवं पहली नरक, इनके पर्याप्त) गति- चक्रवर्ती पद पर रहते हुए काल करे तो **गति 14 की**- (7 नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त), पदवी त्याग कर काल करे तो गति साधु की तरह 70 जाति के देवता की- (35 वैमानिक देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त) अथवा मोक्ष की।

26.**बलदेव की आगति 83 की**- (चक्रवर्ती के 82 एवं दूसरी नरक का पर्याप्त)।

बलदेव की गति अमर है, क्योंकि वे नियमा साधु बनते हैं। अतः साधु की जो गति है वही बलदेव की गति है अर्थात् 70 जाति के देवता या मोक्ष की पूर्ववत्।

27.**वासुदेव की आगति 32 की**- (35 वैमानिक में से 5 अनुत्तर विमान को छोड़कर 30 वैमानिक देवता एवं पहली, दूसरी नरक, इनके पर्याप्त) **गति 14 की**- (7 नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त)

28.**केवली की आगति 108 की**- (15 परमाधार्मिक एवं 3 किल्विषी को छोड़कर 81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और पहली से चौथी नरक, इस तरह 81+15+5+1+1+1+4=108 के पर्याप्त) **गति- मोक्ष की।**

29.**(आराधक) साधुजी की आगति 275 की**- (सन्नी मनुष्य के 276 की आगति में से छठी नरक का पर्याप्त छोड़कर)। **गति- 70** जाति के देवता या मोक्ष की पूर्ववत्।

30.**(आराधक) श्रावकजी की आगति 276 की**- (सन्नी मनुष्यवत्)। **गति- 42** की (12 देवलोक एवं 9 लोकान्तिक, इनके अपर्याप्त-पर्याप्त)।

31.सम्यग्दृष्टि की आगति 363 की- (समुच्चय जीव की आगति 371 में से तेउकाय, वायुकाय के 8 छोड़कर)। **गति-282 की** (81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य, 6 नरक (सातवीं नरक छोड़कर) और 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन 137 के अपर्याप्त-पर्याप्त =274, पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं तीन विकलेन्द्रिय, इन 8 के अपर्याप्त 274+8=282)।

32.मिथ्यादृष्टि की आगति 371 की- समुच्चय जीव की आगति के समान। **गति- 553 की** (563 में से पाँच अनुत्तर विमान के अपर्याप्त, पर्याप्त छोड़कर)।

33.मिश्रदृष्टि की आगति 363 की- सम्यग्दृष्टि के समान। **गति- अमर,** क्योंकि मिश्रदृष्टि पने में जीव काल नहीं करता है।

34.स्त्रीवेद की आगति 371 की- (समुच्चय जीववत्) **गति-561 की** (सातवीं नरक का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।

35.पुरुषवेद की आगति 371 की- (समुच्चय जीववत्) **गति-563 की।**

36.नपुंसकवेद की आगति 285 की- (179 की लड़, 99 जाति के देवता और 7 नरक के पर्याप्त) **गति- 563 की।**

37.गर्भज की आगति 285 की- (पूर्ववत्) **गति- 563 की।**

38.नोगर्भज की आगति 329 की- (179 की लड़, 86 युगलिक मनुष्य और 64 जाति के देवता, इनके पर्याप्त) **गति-395** की (असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रियवत्)।

39.माण्डलिक राजा की आगति 276 की- सन्नी मनुष्यवत्। **गति-535 की** (563 भेदों में से 9 ग्रैवेयक एवं 5 अनुत्तर विमान देव के अपर्याप्त-पर्याप्त, इन 28 भेदों को छोड़कर)।

।। गति आगति का थोकड़ा समाप्त ।।

गति- आगति के थोकड़े से सम्बन्धित ज्ञातव्य तथ्य

गति-आगति के थोकड़े को सुगमता से समझने हेतु यहाँ कुछ नियम प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

1. गति-वर्तमान भव की आयुष्य के अन्तिम समय की पर्याय/गुण की अपेक्षा से गति बतलाई गई है, अर्थात् जिस पर्याय/गुण में रहते हुए जीव काल करके जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है, उसे गति कहते हैं।

2. अगले भव में यदि वह जीव अवश्य ही पर्याप्त बनने वाला है तो उसकी गति में अपर्याप्त व पर्याप्त दोनों भेद माने जाते हैं। जैसे-प्रथम नरक के जीवों की गति में-15 कर्म भूमिज मनुष्य व पाँच सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, इन 20 के अपर्याप्त-पर्याप्त, इस प्रकार कुल 40 भेद माने जाते हैं।

3. यदि वह अगले भव में अपर्याप्त अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होने वाला है तो मात्र अपर्याप्त के भेद ही लिये जाते हैं। जैसे कोई कर्म भूमिज तिर्यञ्च या मनुष्य यदि लब्धि अपर्याप्त तिर्यञ्च या मनुष्य के रूप में जाकर उत्पन्न होता है तो उसकी गति में मात्र अपर्याप्त के भेद ही लिए जायेंगे।

4. सम्यग्दृष्टि की गति में परमाधामी व किल्विषी देवों को तथा सातवीं नारकी के जीवों को नहीं लिया गया, क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टि अवस्था में कोई भी जीव नहीं जाता है। इनमें उत्पत्ति के समय जीव मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं।

5. सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मति-श्रुत- अवधिज्ञान, अज्ञान आदि कुछ पर्यायें तो मरण समय में तथा बाटा बहते जीव में भी मिलती है, किन्तु श्रावकपना, साधुपना, मनःपर्याय ज्ञान, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, माण्डलिक राजा आदि पर्यायें भव के अंतिम समय तक ही मिलती है। बाटा बहती अवस्था में नहीं मिलती है। अतः गति में मरण समय की पर्याय की अपेक्षा से ही कथन समझना चाहिए।

6. आगति-किसी भव विशेष में उत्पन्न होने के पश्चात् जीवन भर में जो भी पर्याय/गुण वह जीव प्राप्त करता है, वह जिस गति, जाति आदि जीव के भेदों में से आकर उत्पन्न हुआ है, उन भेदों के आधार पर (आगति के 371 जीव के भेदों में से) आगति का कथन किया जाता है।

7. जैसे-मिथ्यादृष्टि की आगति में 5 अनुत्तरविमान के देवों को भी लिया गया है। यद्यपि पाँच अनुत्तरविमान से आये हुए मनुष्य उत्पत्ति के समय में सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, तथापि मनुष्य भव में पर्याप्त बनने के बाद परिणामों की कलुषता से मिथ्यात्व आ सकता है, इसलिए 5 अनुत्तरविमान के देवों को मिथ्यादृष्टि की आगति में लिया है।

8. प्रज्ञापनासूत्र पद-20 के अनुसार तेउकाय, वायुकाय से निकला हुआ जीव आगामी एक भव में सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता, इसी कारण से तेउकाय, वायुकाय के जीवों को सम्यग्दृष्टि की आगति में नहीं लिया गया।

9. परमाधामी व किल्विषी देवों तथा सातवीं नारकी के जीवों को सम्यग्दृष्टि की आगति में लिया है, क्योंकि परमाधामी व किल्विषी से आये हुए जीवों में मनुष्य व तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में तथा सातवीं नारकी से आये हुए जीवों में तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में समकित प्राप्त हो सकती है अर्थात् वे मनुष्य व तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं।

10. नरक एवं देव गति से आयुष्य पूर्ण कर जीव पुनः नरक एवं देवगति में उत्पन्न नहीं होते अर्थात् वैक्रिय के दो भव लगातार नहीं होते हैं।

11. एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चौरेन्द्रिय जीव आयुष्य पूर्ण कर नरक गति, देव गति एवं युगलिक मनुष्य तथा युगलिक तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होते।

12. असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर पहली नरक, 51 जाति के देव (25 भवनपति एवं 26 वाणव्यंतर) तक उत्पन्न हो सकते हैं।

13. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के-

भुजपरिसर्प- दूसरी नरक तक
खेचर- तीसरी नरक तक
स्थलचर- चौथी नरक तक
उरपरिसर्प- पाँचवीं नरक तक
जलचर- छठी व सातवीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

14. अपर्याप्त अवस्था में आयुष्य पूर्ण कर जीव नरक गति, देव गति एवं युगलिक में उत्पन्न नहीं होते।

15. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर आठवें देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं। नवमें देवलोक एवं उसके आगे गति एवं आगति कर्मभूमिज मनुष्यों की ही है।

16. तेउकाय, वायुकाय के जीव आयुष्य पूर्ण कर तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं।

17. भवनपति से लेकर आठवें देवलोक तक के देवता काल करके तिर्यंच गति में तथा मनुष्य गति में, दोनों में उत्पन्न हो सकते हैं।

18. 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त जीव चारों गतियों में, सभी स्थानों पर जाकर उत्पन्न हो सकते हैं।

19. सातवीं नरक के जीव आयुष्य पूर्ण कर सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं।

20. युगलिक मनुष्य व युगलिक तिर्यंच ये दोनों आयुष्य पूर्ण कर देव गति में ही उत्पन्न होते हैं-

देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक- पहले किल्विषी तक
हरिवास-रम्यक्वास के युगलिक- दूसरे देवलोक तक
हेमवत-ऐरण्यवत् के युगलिक- पहले देवलोक तक
56 अन्तर्द्वीप के युगलिक- भवनपति एवं वाणव्यन्तर तक उत्पन्न होते हैं।

21. पहले किल्विषी तक के 64 जाति के देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, पहला-दूसरा देवलोक, पहला किल्विषी) आयुष्य पूर्ण कर बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो सकते हैं।

22. उपर्युक्त 64 देवों के अतिरिक्त शेष वैक्रिय (7 नरक, 3 से 8 तक देवलोक, 2 किल्विषी, 9 लोकान्तिक) इसके जीव अपना आयु पूर्ण कर कर्मभूमिज मनुष्य अथवा सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के रूप में उत्पन्न होते हैं। उनसे ऊपर अर्थात् नवें से 12वें देवलोक, 9 ग्रैवेयक तथा 5 अनुत्तर विमान ये तो मात्र कर्मभूमिज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में नहीं।

23. अलग-अलग नरकों से निकलने वाले नारक जीव निम्नानुसार बन सकते हैं-

पहली से सातवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	सम्यग्दृष्टि
पहली से छठी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	श्रावक
पहली से पाँचवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	साधु
पहली से चौथी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	केवली
पहली से तीसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	तीर्थंकर
पहली से दूसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	(वासुदेव, बलदेव)
पहली नरक का आयुष्य पूर्ण कर-	चक्रवर्ती

24. नरक गति, देवगति एवं युगलिक तथा सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य पूर्ण कर अगले भव में अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते।

चौदह गुणस्थानों का बासठिया

	गुणस्थानों के नाम	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	मिथ्यात्व गुणस्थान	14	1	13	6	6
2.	सास्वादन गुणस्थान	6	1	13	6	6
3.	मिश्र गुणस्थान	1	1	10	6	6
4.	अविरत सम्यग्दृष्टि गुण.	2	1	13	6	6
5.	देशविरत श्रावक गुण.	1	1	12	6	6
6.	प्रमत्तसंयत गुणस्थान	1	1	14	7	6
7.	अप्रमत्तसंयत गुणस्थान	1	1	9	7	3
8.	निवृत्तिबादर गुणस्थान	1	1	9	7	1
9.	अनिवृत्तिबादर गुणस्थान	1	1	9	7	1
10.	सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान	1	1	9	4	1
11.	उपशांतमोह गुणस्थान	1	1	9	7	1
12.	क्षीणमोह गुणस्थान	1	1	9	7	1
13.	सयोगी केवली गुणस्थान	1	1	7	2	1
14.	अयोगी केवली गुणस्थान	1	1	0	2	0

चौदह गुणस्थानों के बासठियें से सम्बन्धित ज्ञातव्य तथ्य

1. बासठिया

जीव के भेद-14, गुणस्थान-14, योग-15, उपयोग-12, लेश्या-6, इस प्रकार ये कुल 61 बोल। ये 61 बोल जिस पर घटित किये जाते हैं, एक वह बोल इनमें मिलाने पर कुल 62 बोल हो जाते हैं, इसी कारण से इसे बासठिया के नाम से जाना जाता है। अन्य थोकड़ों में भी बासठिया का अर्थ इसी प्रकार समझना चाहिए।

2. जीव के भेद

पहले गुणस्थान में सभी संसारी जीव मिलने से 14 ही भेद लिये हैं। दूसरा गुणस्थान बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनके अपर्याप्त में मिलने की अपेक्षा से तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त में मिलने की अपेक्षा से 6 भेद लिये हैं। तीसरा गुणस्थान तथा पाँचवें से लेकर चौदहवाँ गुणस्थान, ये सभी मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त में ही मिलते हैं। चौथा गुणस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों में मिलने से जीव के ये दो भेद लिये हैं।

3. गुणस्थान

सभी गुणस्थानों में अपना-अपना ही गुणस्थान मिलता है, अतः सभी में अपना-अपना एक ही गुणस्थान लिया गया है।

4. योग

पहले व दूसरे गुणस्थान में आहारक व आहारक मिश्र काययोग को छोड़कर शेष 13 योग पाये जाते हैं। तीसरे गुणस्थान में 4 मन के, 4 वचन के तथा औदारिक व वैक्रिय काययोग ये 10 योग पाये जाते हैं। क्योंकि मिश्र गुणस्थान में किसी भी लब्धि का प्रयोग नहीं होता है।

चौथे गुणस्थान में आहारक व आहारक मिश्र को छोड़कर 13 योग होते हैं। पाँचवें गुणस्थान में कार्मण काययोग भी नहीं मिलता, अतः आहारक, आहारक मिश्र व कार्मण को छोड़कर 12 योग मिलते हैं। छठे गुणस्थान में आहारक लब्धि, वैक्रिय लब्धि आदि का प्रयोग हो सकता है अतः कार्मण योग को छोड़कर 14 योग हो सकते हैं।

सातवें से लेकर 12वें गुणस्थान तक अप्रमत्तता होने से किसी भी लब्धि का प्रयोग नहीं होता, अतः 4 मन के, 4 वचन के, 1 औदारिक का, इस प्रकार से 9 योग मिलते हैं। तेरहवें गुणस्थान में सत्य व व्यवहार मनोयोग, सत्य व व्यवहार भाषा, औदारिक काय योग, इस प्रकार 5 योग होते हैं। यदि कोई केवली केवली समुद्घात करें तो उसमें उस समय औदारिक मिश्र व कार्मण ये दो योग पाये जाते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 7 योग 13वें गुणस्थान में मिल सकते हैं। 14वाँ गुणस्थान अयोगी होने से वहाँ किसी भी प्रकार का योग नहीं मिलता है।

5. उपयोग

पहले व तीसरे गुणस्थान में 3 अज्ञान व 3 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। दूसरे, चौथे व पाँचवें गुणस्थान में 3 ज्ञान व 3 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। छठे से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के साधु-साध्वियों में 4 ज्ञान व 3 दर्शन ये 7 उपयोग मिल सकते हैं। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवन्तों में केवलज्ञान व केवलदर्शन ये दो उपयोग ही मिलते हैं।

दसवें गुणस्थान का अन्तर्मुहूर्त छोटा होने से तथा वैसा ही जीव का स्वभाव होने से इस गुणस्थान में 4 ज्ञान की ही प्रवृत्ति मानी जाती है। 3 दर्शन की प्रवृत्ति नहीं मानी जाती। अतः इस गुणस्थान में क्षयोपशम की दृष्टि से 7 उपयोग तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से 4 उपयोग माने जाते हैं।

6. लेश्या

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक के जीवों में कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल ये छहों लेश्याएँ मिलती हैं। सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म, शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या मिलती हैं। आठवें से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक के जीवों में एकमात्र शुक्ल लेश्या ही मिलती है। चौदहवाँ गुणस्थान अयोगी होने के कारण लेश्या रहित होता है, अलेशी माना जाता है।

रूपी अरूपी का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 5 के आधार से रूपी-अरूपी का थोकड़ा इस प्रकार है-

1. चौस्पर्शी रूपी के 30 भेद-अठारह पाप, आठ कर्म, कार्मण शरीर, दो योग (मन,वचन), सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कंध। ये तीस भेद चौस्पर्शी रूपी के हैं। इनमें पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, चार स्पर्श-शीत, उष्ण, रूक्ष (लूखा) और स्निग्ध (चौपड़िया) पाये जाते हैं।
2. अष्टस्पर्शी रूपी के 15 भेद- छह द्रव्य लेश्या, चार शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस), घनोदधि, घनवाय, तनुवाय, काययोग, बादर पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध (इसमें द्वीप, समुद्र, नरक पृथ्वियाँ, विमान और सिद्धशिला सम्मिलित हैं)। ये 15 भेद अष्टस्पर्शी रूपी के हैं। इनमें पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श पाये जाते हैं।
3. अरूपी के 61 भेद- 18 अठारह पाप की विरति (त्याग), 12 उपयोग, 6 भाव लेश्या, 5 द्रव्य (पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर) 4 बुद्धि (औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी), 4 भेद मतिज्ञान के (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा), 3 दृष्टि, 5 शक्ति (उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरूषाकार पराक्रम), 4 संज्ञा। ये 61 भेद अरूपी के हैं। इनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते। इनमें अगुरु-लघु का एक भाँगा पाया जाता है।

1. यद्यपि पुद्गलों में दो तीन आदि स्पर्श भी पाये जाते हैं, तथापि वे पुद्गल चतुस्पर्शी जाति के माने गये हैं, इसी प्रकार चार (खुरदरा, भारी, शीत, रूक्ष) पाँच छः आदि स्पर्श वाले पुद्गल अष्टस्पर्शी जाति के माने गये हैं इसलिए यहाँ पुद्गलों के चौस्पर्शी और अष्टस्पर्शी- ये दो भेद ही किये हैं।

रूपी-अरूपी के थोकड़े सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

11 परमाणु से लेकर संख्यात-असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक सभी पुद्गल चतुस्पर्शी ही कहलाते हैं।

12 अनन्त प्रदेशी स्कन्ध चतुस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी दोनों ही प्रकार के होते हैं। जिनमें मात्र चार स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) होते हैं तथा जो जघन्य एक आकाश प्रदेश से लेकर असंख्यात आकाश प्रदेश पर भी ठहर सकते हैं, उन्हें चतुस्पर्शी स्कन्ध कहते हैं। जिनमें आठों स्पर्श होते हैं तथा वे असंख्यात आकाश प्रदेशों पर ही ठहरते हैं, उन पुद्गल स्कन्धों को अष्टस्पर्शी कहते हैं।

13 संसार में जो भी पुद्गल हमें दृष्टिगोचर होते हैं, वे अष्टस्पर्शी स्कन्ध ही होते हैं।

14 इस थोकड़े में किया गया रूपी-अरूपी के भेदों का विभाजन सामान्य अपेक्षा से ही समझना चाहिए। क्योंकि अनेक भेद ऐसे भी हैं जो अरूपी, चतुस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी इन तीनों में ही आ सकते हैं। जैसे-राग-द्वेषादि अठारह पाप-ये चतुस्पर्शी में लिये हैं। गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि रागादि पाप जब तक आत्मिक स्तर पर रहते हैं, तो वे अरूपी होते हैं। जब वे ही पाप मानसिक स्तर पर आ जाते हैं तो चतुस्पर्शी तथा वाचिक और कायिक स्तर पर आ जाते हैं तो अष्टस्पर्शी हो जाते हैं।
राग-द्वेष भाव कर्म होने से अरूपी माने गये हैं। अठारह पाप के रूप में चतुस्पर्शी तथा चेहरे आदि पर झलकने से अष्टस्पर्शी हो जाते हैं। इसी प्रकार मिथ्यात्व को मिथ्यादृष्टि के रूप में अरूपी माना है, जबकि मिथ्यादर्शन शल्य रूप पाप को चतुस्पर्शी माना है तथा मिथ्यात्व की प्रवृत्ति जब वाचिक और कायिक स्तर पर आ जाती है तो वह अष्टस्पर्शी हो जाता है।

15 अरूपी द्रव्यों तथा चतुस्पर्शी पुद्गलों में एक अगुरूलघु भंग पाया जाता है।

कठिन शब्दों के अर्थ

घनोदधि- जमा हुआ कठोर पानी (जमें हुए घी के समान) जो कभी पिघले नहीं।

घनवाय- जमी हुई कठोर वायु (पिघले हुए घी के समान)।

तनुवाय- पतली (हल्की) वायु (तपाये हुए घी के समान)

सूक्ष्म पुद्‌गलास्तिकाय का स्कंध- दो प्रदेशी से लेकर अनन्त प्रदेशी तक के सभी चतुस्पर्शी स्कंध जो दृष्टिगोचर नहीं होते, वैज्ञानिक साधनों से भी जिन्हें देखा नहीं जा सके, वे सब सूक्ष्म पुद्‌गलास्तिकाय के स्कंध कहलाते हैं।

बादर पुद्‌गलस्तिकाय का स्कंध- जो अनन्तानन्त परमाणुओं से मिलकर बना हुआ स्कंध हो, जो अष्टस्पर्शी हो, वे सब बादर पुद्‌गलास्तिकाय के स्कंध कहलाते हैं।

चार बुद्धि-1. औत्पातिकी- जो बुद्धि बिना देखे, सुने और सोचे ही पदार्थों को सहसा ग्रहण करके कार्य को सिद्ध कर दे।

(2) वैनयिकी बुद्धि- गुरु महाराज आदि की सेवा शुश्रूषा करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

(3) कार्मिकी बुद्धि- कर्म अर्थात् सतत अभ्यास और विचार से विस्तृत होने वाली बुद्धि। जैसे-सुनार, किसान आदि कर्म करते-करते अपने कार्य में उत्तरोत्तर दक्ष हो जाते हैं।

(4) पारिणामिकी बुद्धि- अति दीर्घकाल तक पूर्वापर पदार्थों के देखने आदि से उत्पन्न होने वाला आत्मा का धर्म, परिणाम कहलाता है। उस परिणाम के निमित्त से होने वाली बुद्धि। अर्थात् वयोवृद्ध व्यक्ति की बहुत काल तक संसार के अनुभव से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

अवग्रह- इन्द्रिय और पदार्थों के योग्य स्थान में रहने पर होने वाला सामान्य प्रतिभास (बोध)। जैसे घोर अंधेरी रात्रि में रस्सी आदि का स्पर्श होना।

ईहा- अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा होना। जैसे-रस्सी आदि का ही स्पर्श होना चाहिए।

अवाय- ईहा से जाने हुए पदार्थों में निश्चयात्मक ज्ञान होना। जैसे-यह रस्सी का ही स्पर्श है।

धारणा- अवाय से जाना हुआ पदार्थों का ज्ञान इतना दृढ़ हो जाना कि कालान्तर में भी उसका स्मरण रहे।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले जीव के परिणाम विशेष को उत्थानादि कहते हैं।

उत्थान- शारीरिक चेष्टा विशेष।

कर्म- गमनागमन आदि क्रिया।

बल- शारीरिक सामर्थ्य।

वीर्य- आत्मिक शक्ति (जीव-प्रभाव)

पुरुषाकार पराक्रम- बल और वीर्य की संयुक्त प्रवृत्ति।

उपयोग का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र के 13वें शतक के पहले-दूसरे उद्देशक में उपयोग का थोकड़ा इस प्रकार है-

उपयोग के 12 भेद इस प्रकार हैं :-

1. मतिज्ञानोपयोग	**2. श्रुतज्ञानोपयोग**
3. अवधिज्ञानोपयोग	**4. मनःपर्यायज्ञानोपयोग**
5. केवलज्ञानोपयोग	**6. मति अज्ञानोपयोग**
7. श्रुत अज्ञानोपयोग	**8. विभंग ज्ञानोपयोग**
9. चक्षुदर्शनोपयोग	**10. अचक्षुदर्शनोपयोग**
11. अवधिदर्शनोपयोग	**12. केवलदर्शनोपयोग।**

1. पहली, दूसरी और तीसरी नारकी में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि दर्शन)। सात उपयोग लेकर निकलते हैं- 3 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि दर्शन) =87
2. चौथी, पाँचवी और छठी नारकी में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं। पूर्ववत् और 5 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन =85
3. सातवीं नारकी में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु और अवधि दर्शन), 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- (2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन) =53
4. भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं, पहली नारकीवत् और 5 उपयोग लेकर निकलते हैं (चौथी नरकवत्) =85
5. पहले देवलोक से नव ग्रैवेयक तक में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं- पहली नारकीवत् और 7 उपयोग लेकर निकलते हैं- पहली नारकीवत् =87
6. पाँच अनुत्तर विमान में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 ज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु और अवधि दर्शन) और ये 5 उपयोग ही लेकर निकलते हैं =55
7. पाँच स्थावर में जीव 3 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन और ये 3 ही उपयोग लेकर निकलते हैं =33
8. तीन विकलेन्द्रिय में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन, 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन =53
9. तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन। 8 उपयोग लेकर निकलते हैं- पहली नारकी में उत्पत्तिवत् =58
10. मनुष्य में जीव 7 उपयोग लेकर जाते हैं (3 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन-अचक्षु व अवधि दर्शन) 8 उपयोग लेकर निकलते हैं, पहली नारकी में उत्पत्तिवत् =78

नोट- उपर्युक्त 87 आदि संख्याओं में प्रथम अंक लेकर जाने का तथा दूसरा अंक लेकर निकलने का है। जैसे - 87 में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं तथा 7 उपयोग लेकर निकलते हैं।

उपयोग द्वार का यह थोकड़ा बाटा बहती अवस्था (अपान्तरालगति) की अपेक्षा से समझना चाहिए। यही कारण है कि इसमें किसी भी जीव में मनःपर्याय ज्ञान, केवलज्ञान, चक्षुदर्शन तथा केवलदर्शन ये चार उपयोग नहीं बताये हैं। क्योंकि ये चारों उपयोग बाटा बहती अवस्था में नहीं मिलकर भव विशेष में स्थित होने पर ही मिलते हैं।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर
कक्षा : जैनागम स्तोक वारिधि – द्वितीय कक्षा (05 जनवरी, 2014)

प्र. 1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :-

10x1=(10)

(a) अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ होती हैं –
क. 3 ख. 5
ग. 2 घ. 4 (ख)

(b) प्रत्याख्यानावरण कषाय में मरने वाला जीव गति में जाता है –
क. मनुष्य गति ख. देव गति
ग. नरक गति घ. तिर्यंच गति (क)

(c) 'मेंढे के सींग के समान' माया होती है –
क. अनंतानुबंधी ख. अप्रत्याख्यानी
ग. प्रत्याख्यानावरण घ. संज्वलन (ख)

(d) दूसरे देवलोक की गति है –
क. 40 ख. 20
ग. 46 घ. 50 (ग)

(e) तीसरी नरक की आगति है –
क. 19 ख. 18
ग. 17 घ. 16 (क)

(f) तीसरे गुणस्थान में योग पाये जाते हैं –
क. 13 ख. 10
ग. 15 घ. 14 (ख)

(g) पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक के जीवों में लेश्या होती है –
क. 2 ख. 4
ग. 3 घ. 6 (घ)

(h) निम्न में से रूपी है –
क. पुद्गलास्तिकाय ख. अठारह पापों का त्याग
ग. दृष्टि घ. संज्ञा (क)

(i) 5 उपयोग लेकर आते हैं 5 उपयोग लेकर निकलते हैं –
क. वाणव्यन्तर ख. पाँच अनुत्तर विमान
ग. पहला देवलोक घ. भवनपति (ख)

(j) निम्न में से अरूपी है –
क. भाव लेश्या ख. वैक्रिय शरीर
ग. दो गंध घ. कार्मण शरीर (क)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में लिखिए -10x1=(10)

(a) मोहनीय कर्म का अबाधाकाल सात हजार वर्ष का होता है। हाँ
(b) बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय पर अनुकम्पा करने से दर्शनावरणीय का बंध होता है। नहीं
(c) गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बाँधा जाता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। हाँ
(d) चक्रवर्ती की गति, नरक होती है। हाँ
(e) वासुदेव मरकर मोक्ष में जाते हैं। नहीं
(f) उपशान्त मोहनीय गुणस्थान में गुणस्थान एक ही होता है। हाँ
(g) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान में सात उपयोग होते हैं। हाँ
(h) संसार में जो भी पुद्गल दृष्टिगोचर होते हैं, वे अष्टस्पर्शी स्कंध होते हैं। हाँ
(i) पहले गुणस्थान में जीव के 12 भेद ही मिलते हैं। नहीं
(j) तिर्यंच पंचेन्द्रिय 5 उपयोग लेकर जाते हैं। नहीं

प्र.3 प्रश्न एवं उत्तर दोनों क्रम से नहीं दिये हुए हैं, आप उत्तर की जोड़ी मिलाकर सही उत्तर रिक्त स्थान में लिखिए- 10x1=(10)

(a)	प्रचला-प्रचला	- (क) 46	(घ) दर्शनावरणीय
(b)	पर्वत की दरार के समान क्रोध	- (ख) 16	(ग) अनन्तानुबन्धी
(c)	अप्रत्याख्यानी कषाय की स्थिति	- (ग) अनन्तानुबंधी	(र) एक वर्ष
(d)	संज्वलन लोभ की	- (घ) दर्शनावरणीय	(य) अन्तर्मुहूर्त
(e)	मघा नरक की आगति	- (च) 3	(ख) 16
(f)	पहले किल्विषी की गति	- (छ) 6	(क) 46
(g)	सास्वादन गुणस्थान में उपयोग	- (ज) रूपी	(छ) 6
(h)	अप्रमत्त संयत गुणस्थान में लेश्या	-(झ) अरूपी	(च) 3
(i)	3 दृष्टि	- (य) अन्तर्मुहूर्त	(झ) अरूपी
(j)	पांच वर्ण	- (र) एक वर्ष	(ज) रूपी

प्र.4 मुझे पहचानो - 10x2=(20)

(a)	मेरे द्वारा ज्ञान गुण आच्छादित होता है।	ज्ञानावरणीय
(b)	मैं हल्दी फिटकरी के रंग के समान हूँ।	संज्वलन लोभ
(c)	मेरा छेदन-भेदन करके जीव अजर-अमर (मोक्ष) शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।	आठ कर्म
(d)	मेरा उदय होने पर साता व असाता उत्पन्न होती है।	वेदनीय कर्म
(e)	मेरी आगति 108 की तथा गति मोक्ष है।	केवली
(f)	मेरी गति अमर है।	बलदेव
(g)	मैं ऐसा गुणस्थान हूँ जिसमें शून्य लेश्या पायी जाती है।	अयोगी केवली/14 वाँ
(h)	मैं ऐसा गुणस्थान हूँ जिसमें सात योग होते हैं।	सयोगी केवली/13 वाँ
(i)	मैं एक ऐसा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हूँ, जो कम से कम एक आकाश प्रदेश पर भी ठहर सकता हूँ।	चतुस्पर्शी/ चौफरसी
(j)	मैं अरूपी का एक ऐसा भेद हूँ जिसमें पुरूषाकार पराक्रम आता है।	5 शक्ति

प्र.5 निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर एक-दो वाक्यों में दीजिए - (कोई नौ)

9x2=(18)

(a) साता वेदनीय कर्म कितने प्रकार से भोगा जाता है ?

उ. साता वेदनीय कर्म आठ प्रकार से भोगा जाता है- 1. मनोज्ञ शब्द, 2. मनोज्ञ रूप, 3. मनोज्ञ गन्ध, 4. मनोज्ञ रस, 5. मनोज्ञ स्पर्श, 6. मन चाहे सुख, 7. अच्छे वचन और 8. निरोगी काया।

(b) अन्तराय कर्म की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति तथा अबाधाकाल लिखिए।

उ. जघन्य- अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट- 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम, अबाधाकाल- 3 हजार वर्ष।

(c) उच्च गोत्र कर्म कितने प्रकार से जीव बांधता है ?

उ. जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य, ये 8 प्रकार का मद नहीं करने से।

(d) तिर्यंचायु कर्म बंध के कारण लिखिए।

उ. 1. माया करने से, 2. गूढ़ माया करने से, 3. असत्य वचन बोलने से, 4. न्यूनाधिक माप-तौल करने से।

(e) ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियां लिखिए।

उ. ज्ञानावरणीय की पाँच प्रकृतियाँ-1. मतिज्ञानावरणीय, 2. श्रुतज्ञानावरणीय, 3.अवधिज्ञानावरणीय, 4. मनःपर्यायज्ञानावरणीय और 5. केवलज्ञानावरणीय।

(f) दूसरी नरक की आगति व गति लिखिए।

उ. दूसरी नरक की आगति 20 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच, इनके पर्याप्त), गति 40 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच, इनके अपर्याप्त पर्याप्त)।

(g) युगलिक मनुष्यों की आगति लिखिए।

उ. युगलिक मनुष्यों की आगति 25 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच, 5 असन्नी तिर्यंच इन सबके पर्याप्त)

(h) वासुदेव की आगति व गति लिखिए।

उ. वासुदेव की आगति 32 की- (35 वैमानिक में से 5 अनुत्तर विमान को छोड़कर 30 वैमानिक देवता एवं पहली, दूसरी नरक, इनके पर्याप्त), गति 14 की- 7 नरक के अपर्याप्त, पर्याप्त।

(i) पहले देवलोक की आगति व गति लिखिए।

उ. पहले देवलोक की आगति 50 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सबके पर्याप्त) गति 46 की- 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय, इन 23 के अपर्याप्त एवं पर्याप्त।

(j) ज्योतिषी में कितने उपयोग लेकर जाते हैं तथा कितने उपयोग लेकर निकलते हैं ?

उ. 8 उपयोग- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि दर्शन) लेकर जाते हैं। 5 उपयोग- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, अचक्षुदर्शन लेकर निकलते हैं।

प्र.6 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में दीजिए - (कोई आठ) 8x4=(32)

(a) अप्रत्याख्यानी कषाय की चारों प्रकृतियाँ उदाहरण सहित लिखिए।

उ. अप्रत्याख्यानी क्रोध (सूखे तालाब की दरार), मान (अस्थि-हड्डियों का स्तंभ), माया (मेंढे का सींग), लोभ (खंजन-गाड़ी के पहिये का कीट)।

(b) नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियों में गति, शरीर, रस, स्पर्श के नाम लिखिए।

उ. गति 4- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति।
शरीर 5- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर।
रस 5- तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा।
स्पर्श 8- ठण्डा, गर्म, रूक्ष (लुखा), स्निग्ध (चिकना), खुरदरा, कोमल, हल्का और भारी।

(c) शुभ नाम कर्म किन-किन प्रकारों से उदय में आता है ?

उ. 14 प्रकार से- 1. इष्ट शब्द, 2. इष्ट रूप, 3. इष्ट गन्ध, 4. इष्ट रस, 5. इष्ट स्पर्श, 6. इष्ट गति, 7. इष्ट स्थिति, 8. इष्ट लावण्य, 9. इष्ट यशोकीर्ति, 10. इष्ट उत्थान-कर्म-बल-वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, 11. इष्ट स्वर, 12. कान्त स्वर, 13. प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर।

(d) मनुष्य गति के 303 भेदों को लिखिए।

उ. मनुष्य गति के 303 भेद- 15 कर्मभूमिज (5 भरत, 5 ऐरवत, 5 महाविदेह), 30 अकर्मभूमिज- (5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत, 5 ऐरण्यवत), 56 अन्तर्द्वीपज, इन 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से 202 भेद। एक सौ एक सन्नी मनुष्य के चौदह अशुचि स्थानों से उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असंज्ञी अपर्याप्त मनुष्य के 101 भेद। इस प्रकार 202+101=303 भेद हुए।

(e) जलचर, स्थलचर, खेचर की गति लिखिए।

उ. 1. जलचर की गति 527 की- (नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त के 18 जाति के देवता के अपर्याप्त और पर्याप्त, इन 36 भेदों (जीवों) को 563 में से छोड़कर)।
2. थलचर (स्थलचर) की गति 521 की- (उपर्युक्त 527 में से पाँचवीं, छठी और सातवीं नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।
3. खेचर की गति 519 की- (उपर्युक्त 521 में से चौथी नरक का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)।

(f) सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद कौनसे-कौनसे नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

उ. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के-

भुजपरिसर्प-	दूसरी नरक तक
खेचर-	तीसरी नरक तक
स्थलचर-	चौथी नरक तक
उरपरिसर्प-	पाँचवीं नरक तक
जलचर-	छठी एवं सातवीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

(g) तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य कितने उपयोग लेकर जाते हैं कितने उपयोग लेकर निकलते हैं ?

उ. तीन विकलेन्द्रिय में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन, 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन =53
तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन। 8 उपयोग लेकर निकलते हैं- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि) =58
मनुष्य में 7 उपयोग लेकर जाते हैं (3 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन-अचक्षु व अवधि दर्शन) 8 उपयोग लेकर निकलते हैं- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि)=78

(h) राग-द्वेष नामक पाप को अरूपी, चतुस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी इन तीनों में किस प्रकार सम्मिलित किया जा सकता है ?

उ. राग-द्वेषादि अठारह पाप-ये चतुस्पर्शी में लिये हैं। गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि रागादि पाप जब तक आत्मिक स्तर पर रहते हैं, तो वे अरूपी होते हैं। जब वे ही पाप मानसिक स्तर पर आ जाते हैं तो चतुस्पर्शी तथा वाचिक और कायिक स्तर पर आ जाते हैं तो अष्टस्पर्शी हो जाते हैं।

(i) गति-आगति के थोकड़े से सम्बन्धित कोई चार ज्ञातव्य तथ्य पाठ्यपुस्तक के आधार पर लिखिए।

उ. 1. नरक एवं देव गति से आयुष्य पूर्ण कर जीव पुनः नरक एवं देवगति में उत्पन्न नहीं होते अर्थात् वैक्रिय के दो भव लगातार नहीं होते हैं।

2. एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चौरेन्द्रिय जीव आयुष्य पूर्ण कर नरक गति, देव गति एवं युगलिक मनुष्य तथा युगलिक तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होते।

3. असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर पहली नरक, 51 जाति के देव (25 भवनपति एवं 26 वाणव्यंतर) तक उत्पन्न हो सकते हैं।

4. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के-

भुजपरिसर्प- दूसरी नरक तक खेचर- तीसरी नरक तक
स्थलचर- चौथी नरक तक उरपरिसर्प-पाँचवीं नरक तक
जलचर- छठी एवं सातवीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

5. अपर्याप्त अवस्था में आयुष्य पूर्ण कर जीव नरक गति, देव गति एवं युगलिक में उत्पन्न नहीं होते।

6. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर आठवें देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं। नवमें देवलोक एवं उसके आगे गति एवं आगति कर्मभूमिज मनुष्यों की ही है।

7. तेउकाय, वायुकाय के जीव आयुष्य पूर्ण कर तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं।

8. सातवीं नरक के जीव आयुष्य पूर्ण कर सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं।

9. युगलिक मनुष्य आयुष्य पूर्ण कर देव गति में ही उत्पन्न होते हैं-

देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक- पहले किल्विषी तक
हरिवास-रम्यक्वास के युगलिक- दूसरे देवलोक तक
हेमवत-हैरण्यवत् के युगलिक- पहले देवलोक तक
56 अन्तर्द्वीप के युगलिक- भवनपति एवं वाणव्यन्तर तक उत्पन्न होते हैं।

10. पहले किल्विषी तक के 64 जाति के देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, पहला-दूसरा देवलोक, पहला किल्विषी) आयुष्य पूर्ण कर बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो सकते हैं।

11. उपर्युक्त 64 देवों के अतिरिक्त शेष सभी वैक्रिय (7 नरक, 35 देव-10 देवलोक, 2 किल्विषी, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान) के जीव अपना आयु पूर्ण कर मात्र सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यंच या 15 कर्मभूमि मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। नवमें देवलोक एवं ऊपर वाले सभी देव मात्र कर्मभूमिज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

12. अलग-अलग नरकों से निकलने वाले नारक जीव निम्नानुसार बन सकते हैं-

पहली से सातवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- सम्यग्दृष्टि
पहली से छठी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- श्रावक
पहली से पाँचवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- साधु
पहली से चौथी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- केवली
पहली से तीसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- तीर्थंकर
पहली से दूसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- वासुदेव
पहली नरक का आयुष्य पूर्ण कर- चक्रवर्ती

13. नरक गति, देवगति एवं युगलिक तथा सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य पूर्ण कर अगले भव में अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते।

14. तेउकाय, वायुकाय से निकला हुआ जीव आगामी एक भव में सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता है।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : जैनागम स्तोक वारिधि – द्वितीय कक्षा (08 जनवरी, 2017)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :-10x1=(10)

(a) अन्तराय कर्म का अबाधाकाल होता है –
(क) 2000 वर्ष (ख) 3000 वर्ष
(ग) 7000 वर्ष (घ) 10,000 वर्ष (ख)

(b) जिसके प्रभाव से जीव ऊँच-नीच कुलों में उत्पन्न होता है, वह कर्म है-
(क) गोत्रकर्म (ख) अन्तराय कर्म
(ग) ज्ञानावरणीय कर्म (घ) मोहनीय कर्म (क)

(c) अनन्तानुबंधी कषाय में मरने वाला जीव गति में जाता है-
(क) तिर्यंच गति (ख) देवगति
(ग) नरकगति (घ) मनुष्यगति (ग)

(d) साता वेदनीय कर्म भोगा जाता है-
(क) आठ प्रकार से (ख) छः प्रकार से
(ग) चार प्रकार से (घ) दस प्रकार से (क)

(e) चौथी नरक की आगति है-
(क) 40 (ख) 17
(ग) 16 (घ) 18 (घ)

(f) पृथ्वीकाय की गति है-
(क) 243 (ख) 395
(ग) 179 (घ) 50 (ग)

(g) मनुष्य गति के भेद हैं-
(क) 48 (ख) 303
(ग) 101 (घ) 56 (ख)

(h) सातवीं नरक की गति है-
(क) 10 (ख) 16
(ग) 17 (घ) 46 (क)

(i) पुद्गलास्तिकाय है-
(क) रूपी (ख) अरूपी
(ग) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं (क)

(j) अरूपी द्रव्यों तथा चतुस्पर्शी पुदगलों में कौनसा भंग पाया जाता है-
(क) लघु (ख) गुरु
(ग) अगुरुलघु (घ) सभी (ग)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- 10x1=(10)

(a) संज्वलन कषाय में मरने वाला जीव देवगति में जाता है। (हाँ)
(b) सुभग, सुस्वर, प्रत्येक प्रकृति के भेद हैं। (नहीं)
(c) मोहनीय कर्म छः प्रकार से बांधा जाता है। (हाँ)
(d) नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोडाकोडी सागरोपम की होती है। (नहीं)
(e) जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है, उसे आगति कहते हैं। (हाँ)
(f) वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण, प्रत्येक इन तीन के पर्याप्त अपर्याप्त छः भेद होते हैं। (हाँ)
(g) सम्मूर्च्छिम मनुष्य पर्याप्त अवस्था में काल करते हैं। (नहीं)
(h) तीर्थंकर की गति मोक्ष की होती है। (हाँ)
(I) पुद्गलों के चौस्पर्शी और अष्टस्पर्शी दो भेद होते हैं। (हाँ)
(j) तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं, 5 उपयोग लेकर निकलते हैं। (नहीं)

प्र.3 निम्नलिखित में क्रम से जोड़ी मिलाकर उत्तर रिक्तस्थान में लिखिए:-10x1=(10)

(a)	बेंत का स्तम्भ	(क) नरकगति	मान
(b)	अकाम निर्जरा	(ख) देवगति	देवायु बंध का कारण
(c)	अबाधाकाल 7 हजार वर्ष	(ग) रूपी	मोहनीय

(d)	अर्द्धनाराच	(घ) चतुस्पर्शी	संहनन
(e)	10 त्रिजृंभक	(च) 6	देवगति
(f)	माघवती	(छ) 5	नरकगति
(g)	अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का कारण	(ज) देवायु बंध	चतुस्पर्शी
(h)	घनोदधि	(झ) मान	रूपी
(i)	सास्वादन गुणस्थान में उपयोग	(य) संहनन	6
(j)	पाँच अनुत्तर विमान में उपयोग लेकर जाना	(र) मोहनीय	5

प्र.4 मुझे पहचानो :- 10x2=(20)

(a) मेरे द्वारा आत्मा के क्षायिक समकित तथा अनन्त वीतरागता गुण का घात किया जाता है। — मोहनीय कर्म

(b) मैं सूखे तालाब की दरार के समान हूँ। — अप्रत्याख्यानी क्रोध

(c) मैं ऐसी कषाय हूँ जो केवल ज्ञान तथा यथाख्यात चारित्र नहीं होने देती हूँ। — संज्वलन कषाय

(d) मेरी गति अमर है। — बलदेव

(e) मैं ऐसा गुणस्थान हूँ जिसमें तीन लेश्या पायी जाती है। — अप्रमत्त संयत (सातवां गुणस्थान)

(f) मैं ऐसा गुणस्थान हूँ जिसमें दो उपयोग होते हैं। — (सयोगी केवली/अयोगी केवली) 13वाँ/ 14 वाँ गुणस्थान

(g) मैं ऐसा गुणस्थान हूँ जिसमें जीव के चौदह भेदों में से मात्र दो भेद ही पाये जाते है। — अविरति सम्यग्दृष्टि(चौथा गुणस्थान)

(h) मैं एक ऐसा भंग हूँ जो अरूपी द्रव्यों तथा चतुस्पर्शी पुद्गलों में ही मिलता हूँ। — अगुरुलघु

(i) मुझमें जीव 3 उपयोग लेकर जाते हैं 3 उपयोग लेकर निकलते हैं। — पाँच स्थावर

(j) मुझमें जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं 3 उपयोग लेकर निकलते हैं। — सातवी नारकी/3 विकलेन्द्रिय

प्र.5 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए- 9x2=(18)

(a) ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य स्थिति तथा उत्कृष्ट अबाधाकाल लिखिए।

उ. स्थिति- जघन्य-अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट- 30 कोडाकोडी सागरोपम। उत्कृष्ट अबाधाकाल- 3000 वर्ष

(b) छः संस्थान के नाम लिखिए।

उ. छः संस्थान- समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्जक और हुण्डक संस्थान।

(c) 8 प्रत्येक प्रकृतियों के नाम लिखिए।

उ. 8 प्रत्येक प्रकृति- अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थंकर नाम।

(d) नरकायु बंध के कारण लिखिए।

उ. 1. महा आरम्भ करने से, 2. महा परिग्रह करने से, 3.मद्य-मास का सेवन करने से और 4. पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने से।

(e) उच्च गोत्र कितने प्रकार से जीव बांधता है उनके नाम लिखिए।

उ. उच्च गोत्र आठ प्रकार से जीव को बंधता है- 1. जाति (मातृपक्ष) 2.कुल (पितृपक्ष) 3.बल, 4.रूप, 5. तप, 6. श्रुत, 7. लाभ और ऐश्वर्य मद नहीं करने से।

(f) तीसरी नरक की आगति व गति लिखिए।

उ. आगति- 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यञ्च, इन 20 भेदों में से भुजसरिसर्प को छोड़कर 19 की।
गति- 40 की। (15 कर्मभूमि मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यञ्च, इन 20 के अपर्याप्त और पर्याप्त)

(g) दूसरे देवलोक की आगति लिखिए।

उ. आगति- 40 की- 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यञ्च, 30 अकर्मभूमिज में से 5 हेमवय, 5 ऐरण्यवय इन 10 को छोड़कर 20 अकर्मभूमिज, इन सभी के पर्याप्त।

(h) तेउकाय वायुकाय के जीवों की आगति समझाकर लिखिए।

उ. आगति 179 की (101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 30 कर्मभूमिज मनुष्य, 48 तिर्यञ्च)
गति-48 की- (तिर्यञ्च के 48 भेद)

(i) तीन विकलेन्द्रिय में जीव कितने उपयोग लेकर आते हैं और कितने उपयोग लेकर निकलते हैं ?

उ. तीन विकलेन्द्रिय में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन
तीन विकलेन्द्रिय में से जीव 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन = 53

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : - 8x4=(32)

(a) प्रत्याख्यानावरण कषाय की चारों प्रकृतियाँ उदाहरण सहित लिखिए।

उ. प्रत्याख्यानावरण - 1. क्रोध (बालू रेत में खींची गई लकीर), 2. मान- (काष्ट का स्तंभ)
3. माया-(चलते बैल के मूत्र की लकीर), 4. लोभ- (काजल की टीकी)

(b) नाम कर्म की 93 प्रकृतियों के अलावा 10 और उत्तर प्रकृतियाँ कौनसी हैं, उनके नाम लिखिए।

उ 1. औदारिक तैजस बंधन — 2. औदारिक कार्मण बंधन
3. औदारिक तैजस-कार्मण बंधन — 4. वैक्रिय तैजस बंधन

5. वैक्रिय कार्मण बंधन	6. वैक्रिय तैजस-कार्मण बंधन
7. आहारक तैजस बंधन	8. आहारक कार्मण बंधन
9. आहारक तैजस-कार्मण बंधन	10. तैजस-कार्मण बंधन

(c) दर्शनावरणीय, वेदनीय, गोत्र तथा आयुकर्म इन चारों की स्थिति व अबाधाकाल लिखिए।

उ.

कर्म का नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अबाधाकाल
दर्शनावरणीय	अन्तर्मुहूर्त	30 कोड़ाकोडी सागरोपम	3 हजार वर्ष
वेदनीय	12 मुहूर्त	30 कोड़ाकोडी सागरोपम	3 हजार वर्ष
गोत्र	आठ मुहूर्त	20 कोड़ाकोडी सागरोपम	2 हजार वर्ष
आयु	अन्तर्मुहूर्त	33 सागरोपम	अबाधाकाल नहीं

(d) जलचर, थलचर की गति लिखिए।

उ. जलचर की गति 527 की- (नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त के 18 जाति के देवता के अपर्याप्त और पर्याप्त, इन 36 भेदों (जीवों) को 563 में से छोड़कर)।

थलचर (स्थलचर)की गति 521 की - (उपर्युक्त 527 में से पाँचवीं, छठी, और सातवीं नरक के अपर्याप्त और पर्याप्त छोड़कर)

(e) वासुदेव की गति व आगति लिखिए।

उ. वासुदेव की आगति 32 की- (35 वैमानिक में से 5 अनुत्तर विमान को छोड़कर 30 वैमानिक देवता एवं पहली, दूसरी नरक, इनके पर्याप्त)

वासुदेव की गति 14 की- (7 नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त)

(f) केवली की गति व आगति को स्पष्ट कीजिए।

उ. केवली की आगति 108 की- (15 परमाधार्मिक एवं 3 किल्विषी को छोड़कर 81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और पहली से चौथी नरक, इस तरह 81+15+5+1+1+1+4 = 108 इन सभी के पर्याप्त) गति- मोक्ष की

(g) देशविरत श्रावक गुणस्थान, निवृत्तिबादर गुणस्थान, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तथा क्षीण मोहनीय गुणस्थान में योग, उपयोग और लेश्या लिखिए।

उ

नाम	योग	उपयोग	लेश्या
देशविरत श्रावक गुणस्थान	12	06	06
निवृत्ति बादर गुणस्थान	09	07	01
सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान	09	04	01
क्षीण मोहनीय गुणस्थान	09	07	01

(h) अष्टस्पर्शी रूपी के 15 भेद लिखिए।

उ अष्टस्पर्शी रूपी के 15 भेद- छह द्रव्य लेश्या, चार शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस) घनोदधि, घनवाय, तनुवाय, काययोग, बादर पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध (इसमें द्वीप, समुद्र, नरक पृथ्वियाँ, विमान और सिद्ध शिला सम्मिलित हैं।)

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : द्वितीय – जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे | अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1=(10)

(a) वस्तु के सामान्य धर्म को जानना कहलाता है -

(क) ज्ञान (ख) दर्शन

(ग) चारित्र (घ) तप (ख)

(b) दर्शन मोहनीय कर्म की प्रकृति नहीं है-

(क) मिथ्यात्व मोहनीय (ख) मिश्र मोहनीय

(ग) कषाय मोहनीय (घ) सम्यक्त्व मोहनीय (ग)

(c) किस कर्म की स्थिति सबसे उत्कृष्ट होती हैं-

(क) नाम कर्म (ख) वेदनीय कर्म

(ग) मोहनीय कर्म (घ) आयु कर्म (ग)

(d) मनुष्य गति के कितने भेद होते हैं-

(क) 14 (ख) 48

(ग) 198 (घ) 303 (घ)

(e) दूसरी नरक की आगति है-

(क) 20 (ख) 19

(ग) 18 (घ) 16 (क)

(f) तीर्थंकर की आगति है-

(क) 82 (ख) 83

(ग) 38 (घ) 25 (ग)

(g) तीसरे गुणस्थान में योग होते हैं-

(क) 13 (ख) 10

(ग) 12 (घ) 14 (ख)

(h) अरूपी के 61 भेदों में मतिज्ञान के भेद हैं-

(क) 6 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 12 (ख)

(i) सातवीं नारकी में जीव कितने उपयोग लेकर जाते हैं-

(क) 2 (ख) 8

(ग) 7 (घ) 5 (घ)

(j) 5 उपयोग लेकर आते हैं : 5 उपयोग लेकर निकलते हैं-

(क) वाणव्यन्तर (ख) पाँच अनुत्तर विमान

(ग) पहला देवलोक (घ) भवनपति (ख)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- 10x1 = (10)

(a) अनन्तानुबंधी कषाय की स्थिति जीवन पर्यन्त होती है। (हाँ)

(b) जीव पर अनुकम्पा करने से असातावेदनीय कर्म का बंध होता है। (नहीं)

(c) आयुकर्म का अबाधाकाल नहीं होता है। (हाँ)

(d) सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में ही काल कर जाते हैं। (हाँ)

(e) असन्नी मनुष्य की आगति 171 की होती है। (हाँ)

(f) गर्भज की गति 285 की होती है। (नहीं)

(g) उपशांत मोहनीय गुणस्थान में गुणस्थान एक ही होता है। (हाँ)

(h) निवृत्ति बादर गुणस्थान में लेश्या एक ही होती है। (हाँ)

(i) संसार में जो भी पुद्गल दृष्टिगोचर होते हैं, वे अष्टस्पर्शी स्कंध होते हैं। (हाँ)

(j) तीन विकलेन्द्रिय में जीव 5 उपयोग लेकर जाते हैं। (हाँ)

प्र.3 निम्नलिखित में क्रम से जोड़ी मिलाकर उत्तर रिक्तस्थान में लिखिए:- 10x1 = (10)

(a)	किरमिची रंग	(क) 20 भेद	लोभ
(b)	मन की वक्रता	(ख) 30 भेद	अशुभ नाम कर्म
(c)	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	(ग) बुद्धि	20 भेद
(d)	बलदेव की गति	(घ) 02	अमर
(e)	पहले गुणस्थान में उपयोग	(च) लोभ	6
(f)	चौस्पर्शी रूपी	(छ) 8	30 भेद
(g)	वैनयिकी	(ज) 12	बुद्धि
(h)	उपयोग के भेद	(झ) अमर	12
(i)	तीसरी नरक में उपयोग लेकर जाना	(य) 6	8
(j)	पाँच स्थावर में अज्ञान	(र) अशुभ नामकर्म	2

प्र.4 मुझे पहचानो :- 10x2=(20)

(a)	मेरे द्वारा जीव सत् और असत् के ज्ञान से हीन हो जाता है।	मोहनीय कर्म
(b)	मेरे प्रभाव से जीव अपने अगुरुलघु गुण को प्रकट नहीं कर पाता है।	गोत्र कर्म
(c)	मैं ऐसी कषाय हूँ, जिसमें मरकर जीव देवगति में जाता है।	संज्वलन कषाय
(d)	मेरी जघन्य स्थिति 12 मुहूर्त्त है।	वेदनीय कर्म
(e)	मेरी आगति 108 की तथा गति मोक्ष है।	केवली
(f)	मेरी आगति 38 की तथा गति मोक्ष है।	तीर्थंकर
(g)	मेरी आगति 276 की तथा गति 42 की है।	आराधक श्रावक
(h)	मैं देवगति का एक भेद हूँ तथा मेरे 15 भेद हैं।	परमाधामी
(i)	मैं उपयोग का थोकड़ा हूँ, मेरा उल्लेख किस सूत्र में किया गया है।	भगवती सूत्र
(j)	मैं उपयोग का 11वाँ भेद हूँ।	अवधि दर्शन

प्र.5 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए- 9x2=(18)

(a) गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति तथा उत्कृष्ट अबाधाकाल लिखिए।

उ. जघन्य स्थिति- आठ मुहूर्त्त

उत्कृष्ट अबाधाकाल- 2 हजार वर्ष

(b) मनुष्यायु बन्ध के चार कारण लिखिए।

उ. मनुष्यायु बन्ध के कारण- 1. प्रकृति से सरल, 2. प्रकृति से विनीत, 3. दयावन्त, 4. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से रहित

(c) प्रत्येक प्रकृति के 8 भेद लिखिए।

उ. अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थंकर नाम।

(d) उच्च गौत्र कितने प्रकार से बंधता है ? नाम लिखिए।

उ. उच्च गोत्र आठ प्रकार से जीव बान्धता है- 1. जाति (मातृपक्ष), 2. कुल (पितृपक्ष), 3. बल, 4. रूप, 5. तप, 6. श्रुत, 7. लाभ और 8. ऐश्वय मद नहीं करने से।

(e) तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भेद लिखिए।

उ. तिर्यंच पंचेन्द्रिय के- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन पाँच भेदों के सन्नी, असन्नी, अपर्याप्त और पर्याप्त, ये चार-चार भेद होने से 5X4=20 भेद।

(f) 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति एवं गति लिखिए।

उ. 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति 276 की- (99 जाति के देवता, पहली से छठी तक ये छः नरक, एवं 179 की लड़ में से तेउकाय, वायुकाय के 8 भेद छोड़कर 171 की, इस प्रकार 171+99+6=276)

15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की गति 563 की।

(g) देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक आयुष्य पूर्ण कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उ. पहले किल्विषी तक - (भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी पहला, दूसरा देवलोक तथा पहला किल्विषी में)

(h) सातवें गुणस्थान में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ? उनके नाम लिखिए।

उ. 1. तेजो 2. पद्म 3. शुक्ल लेश्या।

(i) चौस्पर्शी रूपी के 30 भेद लिखिए।

उ. चौस्पर्शी रूपी के 30 भेद- अठारह पाप, आठ कर्म, कार्मण शरीर, दो योग (मन, वचन), सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कंध। ये 30 भेद चौस्पर्शी रूपी के हैं।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : - 8x4=(32)

(a) ज्ञानावरणीय कर्म के बंध एवं उदय के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उ. ज्ञानावरणीय कर्म जीव छह प्रकार से बान्धता है-

1. ज्ञान और ज्ञानी का अवर्णवाद करे अथवा अवगुण निकाले।

2. ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करे व उनका उपकार न माने।

3. ज्ञान सीखने में अन्तराय देवे।

4. ज्ञान और ज्ञानी की अशातना करे।

5. ज्ञान और ज्ञानी से द्वेष करे।

6. ज्ञान व ज्ञानी से झूठा विषमवाद (झगड़ा) करें।

उदय दस प्रकार से- पाँच इन्द्रियों का आवरण तथा उन पाँच इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान का आवरण।

(b) असाता वेदनीय कर्म कितने प्रकार से बंधता हैं तथा कितने प्रकार से भोगा जाता हैं ?

उ. असाता वेदनीय कर्म जीव 12 प्रकार से बान्धता है-1. प्राण, भूत, जीव और सत्व को दुःख देने से, 2. बहुत जीवों को दुःख देने से, 3. शोक कराने से,4. बहुत जीवों को शोक कराने से, 5. रूलाने से, 6. बहुत जीवों को रूलाने से, 7. झुराने से, 8. बहुत जीवों को झुराने से, 9. मार-पीट करने से, 10. बहुत जीवों को मार-पीट करने से, 11. परिताप उपजाने से और 12. बहुत जीवों को परिताप उपजाने से।

आठ प्रकार से उदय- 1. अमनोज्ञ शब्द, 2. अमनोज्ञ रूप, 3. अमनोज्ञ गंध, 4.अमनोज्ञ रस, 5. अमनोज्ञ स्पर्श, 6. मन का दुःख 7. वचन का दुःख और 8. काया का दुख।

(c) नाम कर्म की निम्न प्रकृतियों के नाम लिखिए।

उ. 1. संघातन औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण संघातन।

2. संहनन वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और सेवार्त्त संहनन

3. अंगोपाग औदारिक, वैक्रिय और आहारक अंगोपांग

4. आनुपूर्वी नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानुपूर्वी।

(d) मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों के नाम क्रम से लिखिए।

उ. दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ- 1. मिथ्यात्व मोहनीय, 2. मिश्र मोहनीय और 3. सम्यक्त्व मोहनीय

चारित्र मोहनीय के भी दो भेद- कषाय मोहनीय और नो कषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय की 16 प्रकृतियाँ हैं- अनन्तानुबन्धी - 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ, 5. अप्रत्याख्यानी क्रोध, 6. मान, 7. माया, 8. लोभ, 9. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, 10. मान, 11. माया, 12.लोभ, 13. संज्वलन क्रोध, 14. मान, 15. माया, 16. लोभ। नो कषाय मोहनीय की 9 प्रकृतियाँ- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद।

(e) मनुष्य गति के 303 भेदों को लिखिए।

उ. मनुष्य गति के 303 भेद- 15 कर्मभूमिज (5 भरत, 5 ऐरवत, 5 महाविदेह), 30 अकर्मभूमिज- (5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत, 5 ऐरण्यवत), 56 अन्तर्द्वीपज, इन 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त भेद से 202 भेद। एक सौ एक सन्नी मनुष्य के चौदह अशुचि स्थानों से उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असंज्ञी अपर्याप्त मनुष्य के 101 भेद। इस प्रकार 202+101=303 भेद हुए।

(f) स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसकवेद की आगति एवं गति लिखिए।

उ. स्त्रीवेद की आगति 371 की- (समुच्चय जीववत् 563 में से 7 नारकी, 86 युगलिक मनुष्य और 99 जाति के देवता, इन 192 के अपर्याप्त को छोड़कर शेष 371 की)।

गति-561 की (सातवीं नरक का अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)

पुरुषवेद की आगति 371 की-(समुच्चय जीववत्)। गति-563 की।

नपुंसकवेद की आगति 285 की (179 की लड़, 99 जाति के देवता और सात नरक के पर्याप्त)

गति-563।

(g) चौदह गुणस्थानों में से एक से चार तक गुणस्थानों के बासठिया का प्रारूप लिखिए।

उ.

गुणस्थानों के नाम	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. मिथ्यात्व गुणस्थान	14	1	13	6	6
2. सास्वादन गुणस्थान	6	1	13	6	6
3. मिश्र गुणस्थान	1	1	10	6	6
4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुण.	2	1	13	6	6

(h) अरूपी के 61 भेद लिखिए।

उ. अरूपी के 61 भेद - 18 पाप की विरति (त्याग), 12 उपयोग, 6 भाव लेश्या, 5 द्रव्य (पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर), 4 बुद्धि (औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी), 4 भेद मतिज्ञान के (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा), 3 दृष्टि, 5 शक्ति (उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम), 4 संज्ञा।